International Journal of Humanities Social Science and Management (IJHSSM)
Volume 5, Issue 3, May-June, 2025, pp: 178-181 ISSN: 3048-6874
www.ijhssm.org

19वीं शताब्दी में पूर्वी उत्तर प्रदेश के प्रमुख उद्योग

डॉ0 आलोक रंजन
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, इतिहास
दीनानाथ पाण्डेय राजकीय महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, देवरिया

Date of Submission: 04-05-2025 Date of Acceptance: 15-05-2025

आधुनिक उत्तर प्रदेश के पूर्वी भू–भाग में स्थित क्षेत्र जिसे पूर्वी उत्तर प्रदेश कहा जाता है, आज भी कोई निश्चित भौगोलिक, राजनीतिक तथा प्रशासनिक इकाई नहीं है। मुगल काल में इस क्षेत्र का अधिकांश भाग सूबा अवध की सरकार गोरखपुर तथा सूबा इलाहाबाद की सरकार बनारस, जौनपुर तथा गाजीपुर में सम्मिलित था। 18वीं शताब्दी में अवध के नवाबों के अधीन यह भू–भाग चकला गोरखपुर, चकला आजमगढ़ तथा बनारस जमींदारी नामक प्रशासनिक इकाइयों के अन्तर्गत आता था। कालान्तर में अवध की इस नवस्थापित रियासत का भी पतन शुरू हो गया और सर्वप्रथम 1757 ई0 में नवाब आसफुद्दौला ने बनारस जमींदारी के अन्तर्गत आने वाले भू–भागों की प्रभुसत्ता ईस्ट इण्डिया कम्पनी को हस्तांतरित कर दी।[1] फलस्वरूप बनारस, मिर्जापुर, गाजीपुर, बलिया आदि जिले कम्पनी के अधिकार में आ गये। 1809 ई0 में नवाब सआदत अली खाँ ने कम्पनी सरकार से सन्धि करके गोरखपुर और आजमगढ़ का भू–भाग भी उसे सौंप दिया।[2] अतः विवेच्यकाल में पूर्वी उत्तर प्रदेश के अन्तर्गत बनारस, मिर्जापुर, जौनपुर, गाजीपुर, आजमगढ़, गोरखपुर, बलिया आदि जिलों की ही गणना की जाती है।

19वीं शताब्दी में पूर्वी उत्तर प्रदेश के प्रमुख उद्योगों में वस्त्र उद्योग, शक्कर एवं खांडसारी उद्योग, नील उद्योग, शोरा, नमक, धातु तथा काष्ठ उद्योग प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं।

वस्त्र उद्योग की दृष्टि से यह क्षेत्र काफी समृद्ध था। बनारस वस्त्र उद्योग का एक प्रमुख केन्द्र था जो सूती एवं रेशमी वस्त्रों की बुनाई, कालीन उद्योग तथा बनारसी साड़ियों के लिये प्रसिद्ध था। यहाँ तैयार किये गये वस्त्रों का निर्यात बंगाल, बिहार, पश्चिमी भारत, नेपाल तथा दक्षिण में किया जाता था। एक अध्ययन के अनुसार यहाँ विविध प्रकार के वस्त्र तैयार किये जाते थे, जिनमें प्रमुख रूप से सादे और छपाई वाले वस्त्र, रेशमी वस्त्र, मिश्रित वस्त्र (सूती और रेशमी वस्त्रों का मिश्रण) इतयादि होते थे। इसके अतिरिक्त बनारस में रजाई, गद्दे, रूमाल, तहमद, मेजपोश, तकिये के गिलाफ और गलीचे या कालीन भी बड़े पैमाने पर तैयार किये जाते थे। बनारस से निर्यात किये जाने वाले वस्त्रों में ज्यादातर हिस्सा सूती वस्त्रों का होता था। बंगाल को निर्यात किये जाने वाले वस्त्रों की चार किस्में प्रमुख थी–खासा, गाढ़ा, इमरती (अम्बरती) और मलमल।[3]

'खासा' तनजेब या महीन मलमल की एक किस्म का नाम था। आइन–ए–अकबरी में इसका उल्लेख सूती वस्त्रों के अन्तर्गत किया गया है। इसका मुख्य उपयोग पहनावे के कपड़ों में किया जाता था। 'गाढ़ा' साधारण किस्म का सादा सूती कपड़ा था जो मुख्यतया बलिया और जौनपुर के कुछ भागों में तैयार किया जाता था। इसका बड़े पैमाने पर साधारण जनता द्वारा उपयोग किया जाता था। 'इमरती' या 'अम्बरती' बेहतरीन किस्म का सफेद सूती कपड़ा था जिसकी यूरोपीय बाजारों में बेहद माँग थी। यह प्रमुख रूप से गद्दे के अस्तर में प्रयुक्त होता था। 'डोरिया' धारीदार या चारखानेयुक्त सूती कपड़ा था जिसका उपयोग मुख्यतया स्त्रियों के पहनावे में होता था। पहनावे के तौर पर प्रयुक्त होने वाले वस्त्रों में 'मसलिन' बेहद अच्छे किस्म का सूती कपड़ा था। 'महमूदी' मसलिन की एक अन्य किस्म थी जो कि मुख्यतया गाजीपुर जिले के मुहम्मदाबाद में तैयार की जाती थी।[4]

इस क्षेत्र में तैयार किये जाने वाले रेशमी वस्त्रों की भी अनेक किस्में थीं। इनमें किमखाब, बाफ्ता, पोतथान, आबेरवां, अमरू, अतलस, सूसी, एलचा, गिरन्द इत्यादि प्रमुख थे।

'किमखाब' जिसको 'जरबफ्त' भी कहा जाता था, कीमती वस्त्रों की श्रेणी में आता था। यह बनारस के मदनपुरा और अलईपुर में तैयार किया जाता था। 'बाफ्ता' किमखाब की ही एक किस्म का नाम था जो अपेक्षाकृत हल्का होता था। 'आबेरवां' (शाब्दिक अर्थ–बहता हुआ पानी) महीन, जालीदार रेशमी कपड़ा था जिसकी बुनाई में बहुत ही बारीक रेशमी धागे प्रयोग किये जाते थे। 'अतलस' शुद्ध रेशम और मिश्रित दोनों ही तरीकों से बनाया जाता था। इसका निर्माण बनारस के अतिरिक्त आजमगढ़ में भी किया जाता था।[5]

मिश्रित वस्त्रों में 'अमरू', 'मशरू', 'गुलबदन' और 'घलता' नामक वस्त्र प्रमुख रूप से उल्लेखनीय हैं। 'अमरू' मिश्रित किमखाब होता था। इसको अलंकृत करने के लिये जरी के तारों का प्रयोग न करके रेशम के धागों का ही प्रयोग किया जाता था। यह वस्त्र मुसलमानों में अधिक प्रचलित था। 'मशरू' जो कि मिश्रित श्रेणी का एक प्रसिद्ध वस्त्र था, के सम्बन्ध में एक रोचक आख्यान प्राप्त होता है। मशरू का शाब्दिक अर्थ 'स्वीकृत' होता है। इस्लामी परम्परा के अनुसार मुसलमानों को शुद्ध रेशम के वस्त्र धारण करने की आज्ञा नहीं है। ऐसी परिस्थिति में एक फतवे के द्वारा इस वस्त्र की ईजाद हुई और इसे धारण करना विधिसम्मत करार दिया गया।[6] 'घलता' बनारस के अतिरिक्त आजमगढ़, मऊ, मुबारकपुर, खैराबाद आदि स्थानों पर भी तैयार किया जाता था। यह वस्त्र भी सूती और रेशमी धागों के सम्मिश्रण से तैयार किया जाता था। इसको चिकना तथा चमकदार बनाने के लिये उसे गर्म लोहे की बेलनों के बीच से गुजारकर लपेटा जाता था। यूसुफ अली के अनुसार, ''सम्भवतः इसी प्रक्रिया के चलते इसका नाम 'घलता' पड़ा।'' उन्हीं के अनुसार, घलता फारसी भाषा के शब्द 'घल्तीदन' से बना है जिसका अर्थ 'लपेटना' होता है।[7]

इस क्षेत्र का दूसरा प्रमुख उद्योग शक्कर उद्योग था। बनारस मुगलकाल से ही शक्कर उत्पादन के लिये प्रसिद्ध था। इस तथ्य का विवरण आइन–ए–अकबरी में भी मिलता है।

International Journal of Humanities Social Science and Management (IJHSSM)
Volume 5, Issue 3, May-June, 2025, pp: 178-181 ISSN: 3048-6874
www.ijhssm.org

आइन–ए–अकबरी में गंगा के मैदान–जिसमें बनारस जनपद अवस्थित है– का उल्लेख शक्कर उत्पादन के अग्रणी क्षेत्रों में किया गया है। यहाँ निर्मित शक्कर का निर्यात अन्य प्रान्तों, विशेषकर बंगाल और बिहार में किया जाता था। यहाँ शक्कर की कई किस्में तैयार की जाती थीं, जैसे सफेद शक्कर, राब, भेली, खांड अथवा जगेरी। शक्कर बनाने की प्रक्रिया के दौरान कुछ अन्य उत्पाद, जैसे जूसी या राब, शीरा आदि भी, प्राप्त हो जाते थे। इनका उपभोग समाज के गरीब तबके के द्वारा होता था। इन सह–उत्पादों से स्थानीय स्तर पर शराब और तंबाकू भी तैयार किये जाते थे।[8]

बुचानन ने गोरखपुर जनपद के पड़रौना में बनने वाली शक्कर का उल्लेख किया है। उसने शक्कर बनाने वाले सतरह घरों में चौबीस कड़ाहे होने का उल्लेख किया है और पड़रौना में एक ब्वायलर से तैयार किये जाने वाले गुण व शक्कर तथा उनकी कीमतों का भी ब्यौरा दिया है। उसके अनुसार 450 मन शक्कर तैयार करने में कुल 817 रूपये 4 आना की लागत आती थी।[9]

आजमगढ़ जनपद में 1836 ई0 में 61, 373 एकड़ अर्थात् कुल खेती की जाने वाली भूमि के 9.75 प्रतिशत भूमि पर गन्ने की फसल बोयी जाती थी। इस समय यहाँ शक्कर का मूल्य 7 रूपये 10 आना प्रति मन था। 1876 ई0 के आसपास यहाँ खांडसारी मिलों की संख्या 1567 थी। यहाँ शक्कर उद्योग में लगे लोगों में अधिकांशतया व्यापारिक जातियों के लोग थे।[10] गाजीपुर जनपद भी शक्कर उत्पादन का एक प्रमुख केन्द्र था। 1881 ई0 में इस जनपद में खांडसारी मिलों की कुल संख्या 436 थी। इनके द्वारा प्रतिवर्ष लगभग 7000 मन शक्कर का उत्पादन किया जाता था जिसकी कुल कीमत लगभग 8 लाख 30 हजार रूपये थी। इस जनपद के शक्कर उत्पादन के केन्द्रों में जंगीपुर, राजापुर, पारसपुर, बम्हनौली, शादियाबाद, हनुमानगंज, गंगौली, नोनहरा, मुहम्मदाबाद और काजीपुर सिराज प्रमुख थे।[11]

पूर्वी उत्तर प्रदेश में शक्कर का उत्पादन पारम्परिक तरीके से ही किया जाता था। 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में जे0स्टावॉरिनस ने शक्कर उत्पादन की पारम्परिक विधि का वर्णन निम्न प्रकार से किया है –

''ये पक्की लकड़ी के दो मोटे रोलरों के बीच गन्ने को दबाकर उसका रस निकालते हैं। ये रोलर दो फीट लम्बे और छः इंच व्यास के होते हैं। दोनों रोलर सीधे बल एक के ऊपर एक करके रहते है। ये दोनों रोलर इस तरह जुड़े होते हैं कि जरा भी हिलते–डुलते नहीं हैं। इनके बीच करीब चौथाई इंच जगह रहती है। हर एक रोलर के किनारे में चार अरे (स्पोक्स) या हत्थे होते हैं जिन्हें दो लोग विपरीत दिशाओं में घुमाते हैं। इन रोलरों के बीच से गन्ने की खोइयां बाहर निकलती जाती है और रस नीचे रखे नाद में भरता जाता है। इस रस को चूल्हे पर रखे बर्तनों में पकाया जाता है। चूल्हे में गन्ने की सूखी खोइयां ही ईंधन के रूप में जलायी जाती हैं। इस तरह से गुड़, खांडसारी और शक्कर तैयार होती है।''[12]

शोरा, जिसका इस्तेमाल मुख्यतया बारूद बनाने में होता था, पूर्वी उत्तर प्रदेश का एक अन्य प्रमुख उद्योग था। बनारस में शोरे की दो किस्में–कलमी और कच्चा शोरा–तैयार की जाती थीं। बनारस क्षेत्र में इन दोनों ही किस्मों का लगभग 20,000 मन शोरा तैयार किया जाता था। शोधित शोरा ज्यादातर बंगाल भेजा जाता था। बंगाल से उसका निर्यात यूरोप के लिये कर दिया जाता था जहाँ बारूद उद्योग में उसकी बेहद मांग थी।[13]

आजमगढ़ जनपद के अधिकांश परगनों में शोरा तैयार किया जाता था। परन्तु इस जनपद के माहुल, अतरौलिया और मऊ परगनों में शोरा बनाने की मनाही थी, क्योंकि इन परगनों के बहुत से ऐसे लोग, जिनको शोरा बनाने की अनुमति मिली हुई थी, इसकी आड़ में अवैध रूप से नमक बनाने लगे थे। यहाँ निर्मित कच्चा शोरा निर्यात किया जाता था। शोधित शोरा बंगाल के रास्ते यूरोप को भेज दिया जाता था। शोरे की कुछ मात्रा का निर्यात पटना तथा पूर्वी क्षेत्रों में भी किया जाता था, जिनका इस्तेमाल साबुन और शीशा उद्योग में होता था।[14]

गोरखपुर में शोरे की 231 भट्ठियाँ अवस्थित थीं। इस जनपद में स्थित पड़रौना और नवाबगंज शोरा निर्माण के प्रमुख केन्द्र थे। जहाँ कम्पनी ने कच्चे शोरे को शोधित करने हेतु कारखाना स्थापित किया था। स्थानीय किसान इसे प्रतिवर्ष 15000 मन कच्चे शोरे की आपूर्ति करते थे। नवाबगंज में शोरे की 35 भट्ठियाँ थीं जिनमें से प्रत्येक 24 मन शोरा एक सीजन में तैयार करती थीं। पडरौना में भी शोरे की लगभग इतनी ही मात्रा तैयार होती थी।[15]

बलिया जनपद में कच्चा शोरा तैयार करने की 465 भट्ठियाँ थीं जिनके द्वारा प्रतिवर्ष 16,475 मन शोरा उत्पादित किया जाता था। इस जनपद में प्रतिवर्ष 5000 मन शोधित शोरा भी तैयार किया जाता था। कच्चे शोरे के शोधन हेतु यहाँ छः कारखाने स्थित थे।[16]

गाजी जनपद में शोरा उद्योग मुख्यतः सैदपुर, बहरियाबाद और पचोतर परगनों में फैला हुआ था। परगना सैदपुर में कच्चे शोरे को शोधित करने हेतु पाँच कारखाने स्थित थे जो प्रतिवर्ष 12,500 मन शोधित शोरा तैयार करते थे। इन कारखानों को कच्चे शोरे की आपूर्ति बहरियाबाद और सैदपुर के लोनियों द्वारा की जाती थी जो इसे थोड़ी–थोड़ी मात्रा में विभिन्न गाँवों से इकट्ठा करके लाते थे।[17]

एफ0 पेल्सर्ट ने नोनी मिट्टी से शोरा बनाने की विधि का वर्णन किया हैं वह लिखता है कि –

''नमक बनाने की क्यारियों की तरह दो उथली क्यारियाँ बनायी जाती हैं। इनमें एक क्यारी दूसरी से बहुत बड़ी होती है। बड़ी क्यारी को नोनी मिट्टी से भर दिया जाता है तत्पश्चात् इस मिट्टी को पैरों से खूब मरदा जाता है। इसके परिणामस्वरूप मिट्टी सनकर पतले गारे का रूप ले लेती है। इसे दो दिनों तक इसी हालत में छोड़ दिया जाता है ताकि पानी में सत उतर जाये। इसके पश्चात् पानी एक बड़ी मोहड़ी से निकलकर दूसरी क्यारी में जमा हो जाता है और उस पर एक पतली सी पपड़ी बनने लगती है। यह कच्चा शोरा होता है। लोहे के कड़ाहों में इसका पानी सुखा दिया जाता है। पानी सुखाने के लिये उसकी सफेदी को एक से दो बार उबाला जाता है। उबालते समय ही उसका मैल भी निकालते जाते हैं। फिर उसे मिट्टी के एक घड़े में, जिसकी क्षमता पन्द्रह से बीस सेर तक हो सकती है, रख दिया जाता है। रात में ओस पड़ने से उस पर एक पपड़ी पड़ जाती है। अगर उसमें कुछ मैल अभी भी बचा होता है तो वह तले में बैठ जाता हैं फिर इन घड़ों को फोड़ कर शोरे को धूप में सुखा लिया जाता है।[18]

विवेच्य काल में नील उद्योग भी इस क्षेत्र में एक प्रमुख उद्योग के रूप में स्थापित था जो कि यूरोपीय व्यापारियों के द्वारा

International Journal of Humanities Social Science and Management (IJHSSM)
Volume 5, Issue 3, May-June, 2025, pp: 178-181 ISSN: 3048-6874
www.ijhssm.org

संचालित किया जाता था। बनारस में 19वीं सदी की शुरूआत से पहले बहुत थोड़ी मात्रा में नील का उत्पादन होता था। यह नील कपड़ों की रंगाई करने वाले कामगारों, जिन्हें रंगरेज कहा जाता था, के द्वारा तैयार किया जाता था। ये रंगरेज इस नील से कपड़ों की रंगाई करते थे। कालान्तर में गिलक्राइस्ट और चार्टर्स नामक दो यूरोपीय व्यक्तियों ने यहाँ नील के पौधों की खेती शुरू की। बाद के वर्षों में बहुत से यूरोपीय व्यापारियों ने इस जनपद में नील के कारखाने स्थापित किये। इन्हें ईस्ट इण्डिया कम्पनी के द्वारा नील उत्पादन के लिये आर्थिक अनुदान भी प्राप्त होता था।[19]

क्रोमलिन नामक एक अंग्रेज, जो कि आजमगढ़ और मऊ का व्यापारिक रेजीडेन्ट था, ने स्टीवर्ट तथा स्कॉट नामक दो व्यक्तियों के साथ मिलकर आजमगढ़ में नील का कारखाना स्थापित किया। 1807 ई0 तक इस जनपद में नील के सात कारखाने स्थापित किए जा चुके थे। यहाँ के जिला मजिस्ट्रेट ने इन कारखानों की स्थापना का विरोध किया क्योंकि स्थानान्तरित प्रान्तों में बगैर गवर्नर जनरल की अनुमति के किसी भी यूरोपीय व्यक्ति को भूमि पर अधिकार करने और नील बनाने की आज्ञा नहीं थी। अतः क्रोमलिन के व्यवसाय में बाधा खड़ी हो गयी और सरकार के साथ उसका कानूनी विवाद छिड़ गया। उसके व्यापारिक प्रतिष्ठानों का संचालन उसके यूरोपियन और यूरेशियन सहायकों के माध्यम से होता रहा। कालान्तर में इस जनपद में नील के अन्य अनेक कारखाने यूरोपीय व्यक्तियों के द्वारा स्थापित किये गये। 1857 ई0 के विद्रोह के समय यहाँ नील के नौ कारखाने विद्यमान थे। इनमें सबसे महत्वपूर्ण कारखाना दोहरीघाट में स्थित था, जिसका संचालन ई0एफ0 बेनाबिल्स नामक एक यूरोपीय व्यक्ति के द्वारा किया जाता था। 1857 ई0 के विद्रोह के पहले तथा बाद के कुछ वर्षों तक आजमगढ़ जनपद में नील का उत्पादन मुख्य रूप से यूरोपीय व्यक्तियों के हाथों में ही रहा। वसु दरजी नामक केवल एक हिन्दुस्तानी व्यक्ति ऐसा था, जिसके पास नील के कारखानों का स्वामित्व था। 1864 ई0 के पश्चात् नील की ऊँची कीमतों से आकर्षित होकर बड़ी संख्या में भारतीय भी इस उद्योग से जुड़े।[20]

नील के कारखानों की स्थापना के पूर्व स्थानीय व्यक्ति छोटे गोल आकार के कुण्ड में थोड़ी मात्रा में नील तैयार करते थे। ये कुण्ड लगभग पाँच फीट गहरे और चार अथवा पांच फीट परिधि के होते थे। नील के पौधों को उसी में भरकर डुबोया और निकाला जाता था। इसके पश्चात् शीरा को पीटकर तैयार किया जाता था। रंगीन पदार्थ के नीचे बैठ जाने के पश्चात् पानी को अलग कर कनई को निकाल लिया जाता था और फिर उसे उबालकर सुखाया जाता था। इसके बाद उसे कपड़े में बांधकर किसी भारी चीज के नीचे दबाकर उसमें से पानी निकाल लिया जाता था। तत्पश्चात् उसकी गोली तैयार की जाती थी और उसे पीटकर चौड़ा किया जाता था। इसे टुकड़ों में काटकर सुखाया जाता था। इस पद्धति को बाद में त्याग दिया गया किन्तु कभी–कभी कनई तैयार कर उसे कच्चे नील के नाम से बाजार में बेचा जाता था।[21]

कम्पनी के शासन के प्रारम्भिक वर्षों में उत्पादित नील की मात्रा के विषय में आंकड़ों का अभाव है। थामसन के अनुसार 1836 ई0 में आजमगढ़ जनपद में औसतन 1500 मन वार्षिक नील का उत्पादन होता था। यहाँ बढ़िया किस्म का नील तैयार किया जाता था और बाजार में उसकी अच्छी कीमत प्राप्त होती थी। किन्तु यहाँ की भूमि और जलवायु नील की खेती के लिये उपयुक्त न थी। इसके अतिरिक्त यहाँ शक्कर की मांग अपेक्षाकृत अधिक थी। अतः किसानों को गन्ने की खेती के लिये सरलता से अग्रिम धनराशि मिल जाती थी जबकि नील की खेती के लिये उपयुक्त सुविधाएं इस क्षेत्र में उपलब्ध नहीं थी।[22]

पूर्वी उत्तर प्रदेश में धातु उद्योग उन्नति पर था। इस क्षेत्र के अनेक स्थानों पर धातुओं से विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ बनायी जाती थीं। मिर्जापुर पीतल उद्योग के रूप में प्रसिद्ध था। यहाँ अधिकांशतः घरेलू बर्तनों का निर्माण किया जाता था। इस जनपद में किसी भी अन्य स्थान की अपेक्षा धातु उद्योग से जुड़े कारीगरों की संख्या अधिक थी। इनमें भी कसेरा और ठठेरा जातियों की संख्या सर्वाधिक थी। धातु उद्योग से जुड़े कामगारों के मुख्यतया 3 वर्ग थे–सांचा बनाने वाले, पीतल की ढलाई करने वाले और तैयार वस्तुओं की पालिश करने वाले। सांचा बनाने के लिये पीली बलुई मिट्टी का प्रयोग किया जाता था जिसे 'पियरी मिट्टी' कहा जाता था। परन्तु इस मिट्टी का प्रयोग केवल सांचे की बाहरी परत, जिसे 'पल्ला' कहा जाता था, को तैयार करने हेतु ही किया जाता था। भीतरी भाग, जिसे 'गाभा' कहा जाता था, के लिये साधारण मिट्टी का ही प्रयोग किया जाता था। सांचा तैयार करने का काम एक पृथक उद्योग के रूप में था और इससे जुड़े कारीगरों को 'सांचिया' कहा जाता था। बर्तनों के निर्माण हेतु पीतल की जिस धातु का प्रयोग किया जाता था उसे आम बोलचाल की भाषा में 'फूल' कहा जाता था।[23]

गोरखपुर जनपद में लोहे से बनने वाले कृषि संबंधी उपकरणों को लोहार बनाते थे। वे घोड़ों की नालबन्दी भी करते थे।[24] यहाँ लोहे पर सोने व चांदी का पानी तथा हुक्कों पर तांबा चढ़ाने का काम भी होता था। इस काम को करने वाले कामगार 'कुण्डीगर' कहलाते थे। इसी प्रकार तांबे और पीतल के बर्तन तथा जेवरात बनाने का काम भी गोरखपुर में स्थानीय स्तर पर होता था। इस उद्योग से जुड़े हुए लोग कसेरा और ठठेरा कहलाते थे। इन दोनों में अन्तर केवल इतना ही था कि कसेरा मुख्य रूप से कांसे और पीतल के बर्तन बनाते थे जबकि ठठेरे पीतल के जेवरात तैयार करते थे। गोरखपुर, पडरौना और बखिरा के कसेरे बहुत से नये किस्म के पीतल व कांसे के बर्तन तैयार करते थे। बुचानन के अनुसार, छः कसेरे तीन महीने में 240 रूपये कीमत के तीन मन बर्तन तैयार कर सकते थे। इसके लिये साढ़े सत्तानबे सेर तांबा, साढ़े बाइस सेर टिन और चारकोल की आवश्यकता पड़ती थी। इसी तरह ठठेरे एक महीने में दस सेर पीतल के आभूषण बना सकते थे। यहां के सुनार स्वर्ण आभूषण बनाने में दक्षता रखते थे। उनका लाभार्जन तुलनात्मक रूप से अधिक होता था।[25]

बनारस में पीतल के नक्काशीदार बर्तन तैयार किये जाते थे। इसके अतिरिक्त यहाँ पर पीतल की मूर्तियों तथा थालों पर चित्रकारी का काम भी होता था। थालों तथा धातु की अन्य वस्तुओं पर उभार का काम भी यहाँ बड़े पैमाने पर किया जाता था। बनारस में बड़ी–बड़ी तश्तरियाँ, थालें, गंगा–जमुना ट्रे, कटोरे, फूलदान, सुराही, लोटा, मोर, तसले तथा अन्य दूसरी वस्तुओं का भी निर्माण किया जाता था।[26]

काष्ठ उद्योग भी इस क्षेत्र में प्रचलित था। गोरखपुर जनपद में नावें बनाने का कारोबार बड़े पैमाने पर होता था। यहाँ के अधिकतर बढ़ई लकड़ी के व्यापारियों के यहां लट्ठा काटने और नावें बनाने के काम में लगे हुये थे। बुचानन के अनुसार, गोरखपुर में काष्ठ उद्योग से जुड़े बढ़ईयों की मजदूरी चार आना प्रतिदिन

International Journal of Humanities Social Science and Management (IJHSSM)
Volume 5, Issue 3, May-June, 2025, pp: 178-181 ISSN: 3048-6874
www.ijhssm.org

और लगभग 6 रूपये प्रतिमाह थी। बुचानन हमें बताता है कि, एक हजार मन की एक नाव तैयार करवाने में कुल 6 सौ इक्यावन रूपयों की लागत आती थी। उसके अनुसार सखुवा की लकड़ी के एक सौ सात लट्ठों को चीरने की मजदूरी चार रूपया प्रति लट्ठा की दर से चार सौ अट्ठाइस रूपये, लोहे की कील आदि पर खर्च सौ रूपये, रस्सी व बांस आदि पर खर्च पच्चीस रूपये, ठेके पर बढ़इयों की मजदूरी पैंतालिस रूपये, उनके छः महीने के भोजन आदि का खर्च अड़तालिस रूपये, नाव को नदी में उतारते समय बख्शीश के रूप में मजदूरों को दिये जाने वाला धन पांच रूपये था। यह विवरण एक व्यापारी के गुमाश्ते के द्वारा दिया गया है जिसे एक–एक हजार मन की दो नावें बनवाने के लिये नियुक्त किया गया था। गोरखपुर में इमारती लकड़ी का कारोबार भी होता था और उसे दूसरे क्षेत्रों में भी निर्यात किया जाता था। इन लकड़ियों के परिवहन के लिये छोटी नावों की जरूरत पड़ती थी। मांग को दृष्टि में रखकर यहाँ प्रतिवर्ष दो सौ से चार सौ नावों का निर्माण किया जाता था जिन्हें बनारस तथा अन्य स्थानों पर भेजा जाता था। बड़ी नाव को ''धामा'' कहा जाता था। इसके अतिरिक्त यहाँ छोटी नावों का भी निर्माण किया जाता था।[27]

बनारस लकड़ी के खिलौनों के निर्माण के लिये प्रसिद्ध था। इस जनपद में यह उद्योग मुख्य रूप से अलईपुर, तेलियानाला, रामापुरा, भेलूपुरा, कुबरवापुरवा और खोजवा में स्थापित था। खिलौनों के निर्माण में 'कोरया' नामक सफेद और मुलायम लकड़ी को इस्तेमाल में लाया जाता था जो कि हरौरा, पालामऊ, धानूपुर और भगवा से आयात की जाती थी। खिलौनों की रंगाई के लिये लाख तथा विभिन्न रंगों का प्रयोग किया जाता था।[28]

उपरोक्त उद्योगों के अतिरिक्त भी पूर्वी उत्तर प्रदेश के क्षेत्र में अन्य अनेक प्रकार के उद्योग–धंधे प्रचलित थे जिनका यहाँ उल्लेख नहीं किया गया है। इनमें प्रमुखतया अफीम उद्योग, कालीन उद्योग, चमड़े से जूते, मशकें (सिंचाई के थैले) तथा अन्य सामान बनाने का उद्योग, इत्र और केवड़ा जल उद्योग, टेराकोटा उद्योग जिससे कि कुम्हार और काशगर जातियों के लोग जुड़े हुए थे, विद्यमान थे।

सन्दर्भ सूची

1. सैयद नजमुल रज़ा रिज़वी, अठारहवीं सदी के जमींदार, नई दिल्ली, 1988, पृ0–5 ।
2. एच0आर0 नेविल, डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स ऑफ यूनाइटेड प्रॉविन्सेज ऑफ आगरा एण्ड अवध, इलाहाबाद 1909, पृ0 12 ।
3. कमला प्रसाद मिश्र, बनारस इन ट्रांजिशन 1728–1795, दिल्ली 1975 पृ0 131।
4. पूर्वोक्त, पृ0 133–34 ।
5. तरन्नुम फातमा, बनारस का वस्त्र उद्योग (शोध प्रबन्ध), वाराणसी, 2000, पृ0 115–116 ।
6. कमला प्रसाद मिश्र, पूर्वोधृत, पृ0 135
7. यूसुफ अली अब्दुल्लाह : ए मोनोग्रॉफ आन काटन फैब्रिक्स ऑफ नाथ वेस्टर्न प्रॉविन्सेज एण्ड अवध 1900, पृ0 93, 206 उद्धृत, तरन्नुमुम फातमा, पूर्वोधृत पृ0 120
8. कमला प्रसाद मिश्र, पूर्वोधृत, पृ0 151–152 ।
9. माण्टगुमरी मार्टिन, द हिस्ट्री, एण्टीक्विटीज, टोपोग्राफी एण्ड स्टेटिस्टिक्स ऑफ ईस्टर्न इण्डिया, खण्ड–2, दिल्ली 1976, पृ0 561–562 ।
10. जे0 आर0 रीड, रिपोर्ट आन दि डिस्ट्रिक्ट ऑफ आजमगढ़ कम्पाइल्ड इन कनेक्शन विद दि कम्प्लीशन ऑफ दि सिक्स्थ सेटिलमेन्ट, इलाहाबाद 1877, पृ0 160 ।
11. एच0आर0 नेविल, गाजीपुर : ए गजेटियर बीइंग वॉल्यूम ऑफ दि डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स ऑफ दि यूनाइटेड प्रॉविन्सेज ऑफ आगरा एण्ड अवध, इलाहाबाद पृ0–63–64 ।
12. अलेक्जेंडर आई चिचेरोव, मुगलकालीन भारत की आर्थिक संरचना, दिल्ली 2003, पृ0 75
13. कमला प्रसाद मिश्र, पूर्वोधृत, पृ0 152
14. जे0आर0 रीड0 पूर्वोधृत, पृ0–171 ।
15. मार्टिन, पूर्वोधृत, पृ0–562–563
16. एफ0एच0 फिशर, स्टेटिस्टिकल, डिस्क्रिप्टिव एण्ड हिस्टारिकल एकाउन्ट ऑफ दि नार्थ–वेस्टर्न प्रॉविन्सेज ऑफ इण्डिया, वॉल्यूम-XIII पार्ट–III बलिया, इलाहाबाद 1884, पृ0 31–32 ।
17. एच0आर0 नेविल, गाजीपुर : ए गजेटियर, पूर्वोधृत, पृ0–64
18. चिचेरोव, पूर्वोधृत, पृ0 51
19. जे0आर0 रीड, पूर्वोधृत, पृ0 161–62
21. पूर्वोक्त, पृ0 167
22. जे0 थामसन, रिपोर्ट ऑफ दि कलेक्टर ऑफ आजमगढ़ आन दि सेटिलमेंट ऑफ दि सीडेड पोर्शन ऑफ दि डिस्ट्रिक्ट कामली काल्ड चकला आजमगढ़, आगरा, 1837, पृ0 5 ।
23. एच0आर0नेविल, मिर्जापुर : ए गजेटियर बीइंग वॉल्यूम XXVII ऑफ दि डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स ऑफ दि यूनाइटेड प्राविन्सेज ऑफ आगरा एण्ड अवध, इलाहाबाद 1911, पृ0 70–71
24. मीना भार्गव, एग्रीकल्चरल प्रोडक्शन एण्ड रिलेशन्स इन गोरखपुर, लेट एट्टीन्थ सेन्चुरी टू अर्ली नाइन्टीन्थ सेन्चुरी (शोध प्रबन्ध), दिल्ली 1990, पृ0 224 ।
25. मार्टिन, पूर्वोधृत, पृ0 557–558 ।
26. जी0बी0 डैमपियर, ए मोनोग्राफी आन ब्रास एण्ड कॉपर वायर्स ऑफ नार्थ वेस्ट प्रॉविन्सेज एण्ड अवध, पृ0 32–33, उद्धृत अन्नो श्रीवास्तव, एस्पेक्ट्स ऑफ इकॉनामिक हिस्ट्री ऑफ ईस्टर्न उत्तर प्रदेश इन एट्टीन्थ सेन्चुरी (शोध प्रबन्ध) इलाहाबाद, 1997
27. मार्टिन, पूर्वोधृत, पृ0 557 ।
28. ए0सी0 चटर्जी, नोट्स ऑन दि इण्डस्ट्रीज ऑफ यूनाइटेड प्राविन्सेज, इलाहाबाद, 1908, पृ0 38–39, उद्धृत, अन्नो श्रीवास्तव पूर्वोधृत।